समकालीन साहित्य

विकास, विस्थापन और समाज

सम्पादक

डॉ. पी. रवि ¦ डॉ. मूसा एम.

अनुक्रम

विकास का मतलब 7
पंकज बिष्ट

विकास की अवधारणा पर पुनर्विचार की आवश्यकता 20
रघुवंश मणि

विकास का आतंकवाद, मुख्यधारा का भोगवाद और आदिवासी प्रति–संस्कृति 27
रणेन्द्र

विकास, विस्थापन और साहित्य 48
रामजी राय

विस्थापन : विडम्बना और त्रासदी 63
वीरेन्द्र मोहन

विकास की भूमण्डलीय नीति और आदिवासी समाज का यथार्थ 73
विनोद तिवारी

भारतीय साहित्य में विकास और विस्थापन की त्रासदी 96
विश्वासी एक्का

विस्थापन और हिन्दी उपन्यास 104
बीरपाल सिंह यादव

विकास, विस्थापन और समकालीन उपन्यास 116
शिगेश जी.एस.

आदिग्राम का वह तीसरा आदमी कौन है? 128
मूसा एम.

भारतीय साहित्य में विकास और विस्थापन की त्रासदी

विश्वासी एक्का

भारत में मानव समुदाय का विस्थापन सदियों से जारी है। कभी लोग विभाजन के कारण विस्थापित हुए, तो कभी विकास की शर्तों ने इन्हें बेघर किया। विभाजन के कारण विस्थापित लोगों के कष्ट और समस्याओं ने लोगों को भीतर तक झकझोर दिया, वे जड़ से उखड़ गये, अपनी पुरानी भूमि उन्हें जीवन के अन्तिम क्षणों तक अपने पास बुलाती रही। भारत–पाक विभाजन इस त्रासदी का ज्वलन्त उदाहरण है। इस विभाजन में कुछ लोग स्वेच्छा से, भावनाओं में बहकर भारत और पाकिस्तान चले गये, तो दोनों देशों की एक बड़ी आबादी को न चाहते हुए अपनी जन्मभूमि को छोड़कर जाने को विवश होना पड़ा, दोनों ही स्थितियों में लोगों को विस्थापन का दर्द भोगना पड़ा।

विकास के नाम पर होने वाला विस्थापन सर्वाधिक पीड़ादायक होता है, क्योंकि लोगों को बलपूर्वक उनकी भूमि से हटा दिया जाता है, कोई भी मानव समुदाय अपने पूर्वजों की भूमि आसानी से नहीं छोड़ना चाहता, उस भूमि से उसका भावनात्मक लगाव होता है, तिनका–तिनका जोड़कर जिस घर–गृहस्थी को बनाया है उसे कोई आसानी से कैसे छोड़ सकता है, उस पर पर्याप्त मुआवज़ा न मिलना उनके दुख–दर्दों को और बढ़ा देता है। विकास के लिए विस्थापन का अर्थ है किसी स्थान पर बसे हुए लोगों को उनकी जगह से हटाना और उस जगह को खाली करा लेना। देश जिस गति से विकास कर रहा है, उसी गति से विस्थापन की समस्या बढ़ रही है।

विस्थापन से ग्रामीण और आदिवासी समुदाय सर्वाधिक प्रभावित होता है। यह विडम्बना ही है कि जहाँ आदिवासियों की बसाहट होती है

वहाँ जंगल होते हैं, नदियाँ होती हैं, उस भूमि के नीचे खनिज सम्पदा होती है। इस प्रकार देश में विभिन्न प्रकार की विकास योजनाओं के द्वारा आदिवासियों को उनकी जन्मभूमि, कर्मभूमि से दरकिनार कर दिया जाता है। विकास के लिए क्या विस्थापन ज़रूरी है? क्या आदिवासियों को, ग्रामीण जनता को कम–से–कम प्रभावित किये बिना विकास सम्भव नहीं है? क्या उद्योगों से या बाँध निर्माण से ही विकास सम्भव है? क्या उद्योगों से सभी प्रभावितों को रोज़गार मिल जाता है? क्या सभी प्रभावितों को पर्याप्त मुआवज़ा मिल पाता है? आज़ादी के बाद बनी डी.वी.सी. परियोजना के मात्र दो बाँधों से 93,874 लोग विस्थापित हुए। इन परियोजनाओं से विस्थापित होने वाले तीन चौथाई आदिवासी थे। सन् 1942–43 में 'डिमना बाँध' का निर्माण किया गया था जिसमें 12 गाँवों के लोगों को विस्थापित किया गया था। कभी झारखण्ड के आदिवासियों की संख्या 70 प्रतिशत थी अब धीरे–धीरे इनकी संख्या कम होती जा रही है। झारखण्ड में औद्योगीकरण की शुरुआत औपनिवेशिक काल से ही शुरू हो गयी थी। सन् 1907 में जमशेदजी टाटा ने काली माटी क्षेत्र में अपनी फैक्ट्री की नींव रखी, इसके लिए 3564 एकड़ ज़मीन का अधिग्रहण किया गया और हज़ारों परिवारों को विस्थापित होना पड़ा।

विस्थापन की पीड़ा अपनी ज़मीन से उखाड़ दिये जाने के बाद अपनी खुली जड़ों को लेकर और कहीं न जम पाने की भीषण विवशता है जो उन्हें उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत से अलग–थलग कर देती है। हमारे देश और समाज की वर्तमान समस्याओं में विस्थापन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बीसवीं शताब्दी की एक कारुणिक परिघटना के अनेक आयाम उपन्यासों सहित साहित्य की विविध विधाओं के विषय बने हैं। सबसे पहले हिन्दी साहित्य में देवेन्द्र नाथ सत्यार्थी ने अपने उपन्यास 'रथ के पहिये में' आदिवासी समाज एवं उनकी विस्थापन की समस्या को चित्रित किया है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' में संथालों को उनके ज़मीनी हक़ से बेदखल कर दिये जाने और संथालों को अपने सत्व की लड़ाई लड़ते हुए दिखाया गया है। संजीव के उपन्यास 'पाँव तले दूब' में झारखण्ड में औद्योगीकरण से उत्पन्न विस्थापन की समस्या को उजागर किया गया है। उपन्यास 'पंचपहाड़' में खनिज बहुल क्षेत्र की समस्याओं का चित्रण है। औद्योगीकरण की चपेट में आते गाँव, झारखण्ड मुक्ति आन्दोलन और आदिवासी जीवन के यथार्थ को इस उपन्यास में

प्रमुखता से उठाया गया है। 'पाँव तले दूब' का पात्र सुदीप्त परिस्थितियों को बदलना चाहता है। उसकी राय में आदिवासियों की दो कमज़ोर नसें हैं–एक तो अरण्यमुखी संस्कृति और दूसरी उत्सवधर्मिता। पहली संस्कृति उन्हें सभ्यता को विकास से जुड़ने नहीं देती तो दूसरी उन्हें कंगाल बनाती है।

मध्य प्रदेश के होशंगाबाद में तवा नदी पर 'इन्दिरा सागर' बाँध बनाया गया है। इस बाँध के बनने से 44 गाँव विस्थापित हुए, इसका डूब क्षेत्र 5982 कि.मी. है। नत्थू यादव जो नया चूरना गाँव के निवासी हैं, बताते हैं कि उनकी ज़िन्दगी जैसे रुक सी गयी है और उन्हें नहीं पता कि आगे क्या करना है। जो ज़मीन उन्हें घर बनाने के लिए मिली आज तक उसका पट्टा नहीं मिला। जिस घर में लोग रहते हैं, वहाँ सोलर लाइट है, जिसका बिल 500 रुपये प्रतिमाह आता है जबकि सरकार ने कहा था, वर्षों तक उन्हें बिल नहीं देना पड़ेगा। विस्थापन के दर्द में सरकार द्वारा छला जाना उन्हें अविश्वास और अनास्था से भर देता है।

वीरेन्द्र जैन का 'डूब' यथार्थवादी उपन्यास है, इसमें आदिवासी समाज के शोषण, विस्थापन और संघर्ष की कथा है। इस उपन्यास में लेखक ने भारतीय ग्रामों के शोषण तन्त्र को उजागर किया है। विस्थापन की पीड़ा और पर्यावरण के विनाश की चिन्ता को बड़ी बारीकी से कथारूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में ग्रामीण समाज बिजली परियोजना का विरोध करता है, वह ऐसा विकास नहीं चाहता जिससे उनका स्वयं का जीवन विनष्ट हो जाये विस्थापन से डरा और शोषण के विभिन्न पक्षों से आतंकित ग्रामीण समाज बिजली परियोजना जैसी विकास की योजना का विरोध करने को विवश हो जाता है।

रणेन्द्र का उपन्यास 'ग़ायब होता देश' मुण्डा जनजाति को केन्द्र में रख कर लिखा गया है। एक साक्षात्कार में उपन्यासकार कहते हैं–"अपनी नौकरी के दौरान मुझे बीते छब्बीस सालों में आदिवासी समुदाय के बीच काम करने का मौक़ा मिला। इस दौरान मैंने देखा कि किस तरह से उन्हें समाज के हाशिये पर रखा जा रहा है, उन्हें उनकी ज़मीन से बेदखल किया जा रहा है। उन्हें उस विकास का सपना दिखाया जा रहा है, जिससे सिर्फ़ कॉर्पोरेट और पैसे वालों का भला हो रहा है।" उपन्यास का प्रस्तुत अंश डूब की त्रासदी को किस तरह चित्रित कर रहा है–"डहरते–डहरते हमलोग एकदम गाँव के डूब वाला इलाका के पास

पहुँच गये। दुलमा नदी का बँधा पानी दूर तक पसरा हुआ। थोड़ा अँधेरा, थोड़ा फैलाव के कारण दूसरा छोर–पाट दिखाई नहीं दे रहा था। बँधा होने के कारण धारा में बहाव गति तो नहीं थी किन्तु गहराई थी। बहुत ऊपर चढ़ आया था पानी। यह एदलहातु की ऊपर टोली थी, टुंगरीनुमा ऊँचाई पर बसी। बीस–पच्चीस घरों की टोली, इसीलिए डूब से जैसे–तैसे बची हुई थी। लेकिन इस बाँध में एक सौ सत्तर गाँव और पचास मील तक फैला हज़ारों साल पुराना घना जंगल पूरी तरह डूब गया था।'' अपनी ज़मीन से उखाड़ दिये गये लोग पाते हैं कि उनका देश ग़ायब होता जा रहा है।

शैलेय का उपन्यास 'हलफनामा' टिहरी बाँध से विस्थापितों पर केन्द्रित है। यह उपन्यास बताता है–जो ज़मीन के मालिक नहीं हैं न उन्हें पुनर्वास मिलता है और न ही मुआवज़ा। उपन्यासकार कहते हैं–''दरअसल विस्थापन शोषण का उपकरण है।'' महुआ माजी का 420 पृष्ठों का उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकण्ठ हुआ' आदिवासियों के विस्थापन, विकिरण एवं रेडियो एक्टिव प्रदूषण और आदिवासियों के लोक विश्वास और मिथकों पर लिखा गया है। यह उपन्यास केवल सिंहभूम के आदिवासियों की विस्थापन सम्बन्धी समस्याओं तक ही सीमित नहीं है, इसकी व्याप्ति जापान, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा विभिन्न द्वीपों में रहनेवाले आदिवासियों के जीवन तक है। इस उपन्यास में मरंग गोड़ा नामक एक काल्पनिक गाँव है। वहाँ पहले प्रकृति सन्तुलित थी लेकिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आने के बाद इस गाँव में विकिरण, रेडियोधर्मी प्रदूषण से वहाँ के लोग और प्रकृति प्रभावित हो चुकी है। बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं, तालाब और नदियों की मछलियाँ मर रही हैं। तो क्या मरंग गोड़ा को विषपान करा दिया गया है? कितना मार्मिक है यह। उपन्यास का एक पात्र कहता है–''हम विकिरण को पचा सकते हैं पर अपने बच्चों की भूख बर्दाश्त नहीं कर सकते।'' गाँव वालों का कहना है–''विकिरण तो हमें बाद में मारेगा, मगर भूख तो हमें कुछ ही दिनों में मार देगी, अपने बाल–बच्चों को कब तक भूख से तड़पते देखा जा सकता है।''

बाबाराव मराडी का मराठी उपन्यास 'टाहो' जिसका हिन्दी अनुवाद 'आक्रोश' शीर्षक से किया गया है, में भी विस्थापन पर सवाल उठाया गया है। क्या विकास का मतलब लोगों को विस्थापित करना है? विकास के नाम पर बाँध बनाये जा रहे थे, उसके नीचे आदिवासियों

की ज़मीनें जाने लगी थीं, उनके घर जाने लगे थे। विकास के नाम पर विस्थापन का प्रश्न निर्मित होने लगा था। आदिवासियों की ज़मीनों पर बाँध बने लेकिन उस बाँध का पानी मात्र ज़मींदार, सेठ साहूकारों के खेतों में? डोगरगाँव के आदिवासी इकट्ठा हुए। सब लोगों के घर–बार इस बाँध में डूबने वाले थे। सब लोग चिन्तामग्न थे।

रोज केरकेट्टा की कहानी 'फिक्सड डिपाजिट' विस्थापन की समस्या पर केन्द्रित है। कहानी का एक पात्र बताता है–"अचानक एक दिन सर्वे के लिए लोग आये और दिन भर नाप जोख कर खूँटा गाड़ कर चले गये। टोपी पहने इंजीनियरों, ओवरसियरों और चेयरमेनों का दल इधर–उधर घूमता रहा। उन्होंने मनोहर दा के आँगन को, हरापन लोहरा के बारी को, नीचे से पूरे गाँव के खेतों को घेरे के भीतर कर दिया गया था। शाम को जाते–जाते उन्होंने घोषणा कर दी थी–एक वर्ष के अन्दर गाँव खाली कर देना। भीड में से किसी को पूछने की हिम्मत नहीं हुई कि गाँव खाली करके वे जायेंगे कहाँ। विस्थापन की समस्या अपने आप में तो भयावह है ही, वह दूसरी अन्य समस्याओं को भी जन्म देती है, कहानी में लेखिका ने इस ओर भी संकेत किया है। मुनाफ़े के रूप में जो एक लाख रुपये मिले थे, मनोहर दा ने बेटे के नाम पर ज़मा करा दिये। नालायक बेटा, उन पैसो को शराब पीने में खर्च करने लगा, रिश्ते के भाइयों को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने मनोहर दा की बेटी मीना के नाम पोस्टऑफिस में पचास हजार रुपये फिक्सड डिपाजिट में ज़मा करा दिये। जब शराबी बेटे को इस बात की ख़बर मिली तो उसने माता–पिता को बेरहमी से पीटा। बहन मीना घबरा गयी और काम करने के लिए सहेली के साथ दिल्ली पलायन कर गयी।

साहित्य मे गद्य के साथ पद्य में भी विस्थापन की त्रासदी को स्थान मिला है, कवियों का आक्रोश और संवेदनाएँ उनके काव्य में दिखाई देती हैं। कवि नागार्जुन ने सन् 1947 में विस्थापन सम्बन्धी एक कविता लिखी जो उद्‌बोधन, युगधारा में संकलित है–

झारखण्ड सतपुड़ा सदृश्य तव स्कन्ध
रत्नाकर हो अगर तुम्हारा नाम

x x x

अबरक और कोयला और पेरउओल
हीरा और जवाहर सोना चाँदी लोहा स्पात

अन्दर दबी पड़ी है सौ सौ खान
उठो–उठो, उठ जाओ विंध्य महान

x x x

भील, गोड़, हो, मुण्डा और संथाल
अब भी तो विकसित हों तेरे बाल

प्रेमशंकर शुक्ल की कविता 'चीनी' भी इन्हीं संवेदनाओं से युक्त है–

चीनी हमें मिठास से अधिक कड़वाहट
के लिए आती है याद गुलामी के दिनों में
चीनी ही है जिसने हमारे कितने पूर्वजों को
अपनी ज़मीन से किया बेदखल

x x x

विस्थापन पर सोचते–विचारते आजकल
कविता से पूछता रहता हूँ बार–बार
आखिर शक्कर की बात करते–करते
चक्कर क्यों खाने लगता है मेरा दिमाग़।

विजयकुमार ने भी अपनी कविताओं में विकास और विस्थापन को कठघरे में खड़ा किया है–

कोयले की खदानों में अक्सर उग आयी घास सबसे अधिक ज़िद्दी थी
वह सबसे अधिक हरी थी, काले और सफेद रंग में
बहुत पड़ जाता था फ़र्क़, उन दिनों में रंग सभ्य और असभ्य के बीच
एक अदृश्य लकीर थी उनकी आँखों में
सबसे हेय मज़दूरों की चमड़ियाँ थीं।

कवि की एक अन्य कविता है–

ज्वालामुखियों के राख उगलने के पहले
किसने कहा कि यह ज़मीन बंजर थी
किसने कहा कि इस मिट्टी में नमी नहीं थी
किसने कहा कि हमारी समतल और हरी ज़मीन कभी बीहड़ थी
ज्वालामुखियों के फ्यूराइल उगलने के पहले
इस ज़मीन के नीचे भी
प्रसुप्त उण्डे लावे की एक नदी बहती थी

और
हमारे खेतों की मृदुल उपजाऊ मिट्टी में ही
हमारी भूख भी घुली हुई थी।

विजयकुमार जी की कविताओं में धनबाद और बोकारो क्षेत्र में कोयलांचल की पीड़ा है कि, किस तरह बाहर से आये लोग कोयला खानों के मालिक बने और उच्च पदों पर आसीन हो गये और विस्थापित लोगों को उपेक्षित कर निम्न पदों पर, मज़दूर के तौर पर कोल कम्पनी में नौकरी दी गयी। विस्थापितों के शोषण का यह भी एक पक्ष है। इसी प्रकार रेणु मिश्रा ने अपनी कविता में विस्थापन की पीड़ा को बड़ी गहराई से उकेरा है–

अपनी धरती पर ही
विस्थापन का दंश सहता
काले चीकट कपड़ों में लिपटा
कोयला निकालता आदमी

x x x

उसे याद आता है भूख से बिलबिलाते
अपने बच्चों का चेहरा
जिनके पेट में दहक रही है
सदियों से जलती कोयले की अँगीठी

x x x

काले कोयले के काले धन से
उजले हो जाते हैं सफेदपोश
और छोड़ जाते हैं कोयले की कालिख
उसके हाथों की लकीरों में
धरती की गोद में जाकर भी
भूखा ही रहा आदमी।

विस्थापन की समस्या पहले भी थी लेकिन भूमण्डलीकरण के इस दौर में यह समस्या और तेज़ी से बढ़ी है। विकास ज़रूरी है लेकिन विनाश की क़ीमत पर नहीं और यह भी कि विकास के नाम पर सबसे ज़्यादा प्रभावित ग्रामीण और आदिवासी जनजीवन एवं उनके संसाधनों पर आधारित विकास की नीतियाँ बने, जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो। विकास के लिए क्या विस्थापन ज़रूरी

है? क्या प्रभावित मानव समुदाय का पुनर्वास और पर्याप्त मुआवज़ा पाना उनका अधिकार नहीं है। ऐसे प्रश्न ही संवेदनाओं को झकझोर देते हैं और साहित्यकार अपने लेखन के द्वारा पाठकों, कॉर्पोरेट जगत तक संवेदनाओं का संचार करना चाहते हैं, प्रभावित लोगों को न्याय दिलाना चाहते हैं और निश्चय ही कुछ अंशों तक तो साहित्य अपने उद्देश्य में सफल है।

(गूगल और आदिवासी विकास से विस्थापन, सम्पा. रमणिका गुप्ता, से साभार)

विकास, विस्थापन और साहित्य, साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र में एकदम नया विषय है। अभी तक आलोचना के क्षेत्र में इस विषय को लेकर कोई पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में विकास को लेकर एक–दो पुस्तकें आ गयी हैं। भारत विभाजन सम्बन्धी विस्थापन एवं शरणार्थी समस्याओं को लेकर पुस्तकें उपलब्ध हैं। लेकिन विकास, विस्थापन तथा उसके हेतु जो मानवीय एवं पर्यावरण–पारिस्थितिक संकट पैदा हुआ है, वह विभाजन सम्बन्धी विस्थापन से बिल्कुल अलग है। समकाल में इसी मुद्दे को लेकर साहित्य रचा जाता है, किन्तु उसके समग्र अध्ययन का कार्य नहीं हुआ है, जिसकी सख़्त ज़रूरत है। इसे मद्देनज़र रखते हुए कालटी श्रीशंकराचार्य विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में जो संगोष्ठी हुई, उसमें प्रस्तुत प्रपत्रों के साथ कुछ और आलेख जोड़कर पुस्तक बनाने का प्रयास हुआ, जिसका यह सुखद परिणाम है।

आलोचना / Criticism

वाणी प्रकाशन

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से
Vani Prakashan's signature motif is created by
Artist Maqbool Fida Husain

www.vaniprakashan.com

e E-book Available

ISBN : 978 93 89012 24 8

9 789389 012248

आवरण : वाणी स्टूडियो